VIII/343

५.६.६२

प्रिय बहन,

१६ जून के साप्ताहिक हिन्दुस्तान में 'आपका' एक 'अंग्रेज हिन्दी समझे' शीर्षक लेख पढ़ा। बहुत पसन्द आया। आपने जो बातें का बहुत जोरदार रूप में समर्थन किया है इसलिए आभारी हूँ। इसी सम्बन्ध में अपना एक परिपत्र आपको भेज रहा हूँ। उसपर भी लिखने की कृपा करें। अब यह आवाज संगठित रूप में उठानी है नहीं तो 'हिन्दी तो मर गई, निदान होगी अब यही' ही एक दिन कहना पड़ेगा। संसद में दो या हिन्दी वालों को छोड़कर प्रायः सभी ने अंग्रेजी के पक्ष में प्रस्ताव पास होगया पर हिन्दीवालों की आवाज भी नहीं सुनी। अवध के पतन के समय जो हाल वहाँ के नवाब वाजिद अलीशाह ने अपनाया था ठीक वैसा ही हाल आज के हिन्दी के नेता अपनाये हुये हैं ऐसा लगता है। हिन्दी राष्ट्रभाषा बने या न बने इससे उन्हें क्या? उन्हें तो मोटी मोटी तनख्वाहें मिलती ही हैं, नाम भी हो ही जाता है। यह समय है निद्रात्याग कर उठ बैठने और कुछ काम करने का। आपने अपने लेख द्वारा घंटी बजाई है उचित समय पर। इसके लिये बधाई।

आपका भाई, [illegible]

राष्ट्रीय अभिलेखागार भारत National Archives of India

VIII/343

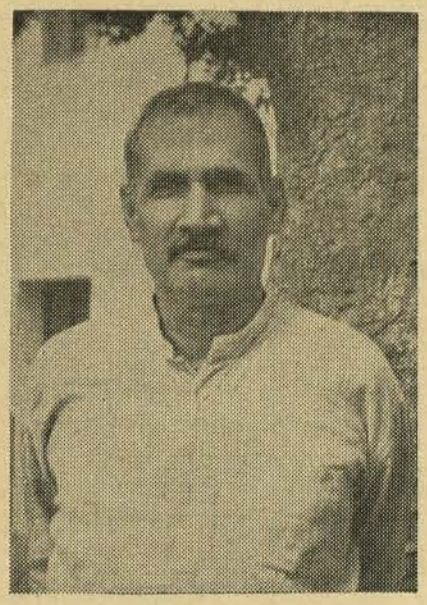

श्री मो० सत्यनारायण जी पिछले ४२ वर्षों से हिन्दी-प्रचार का काम बड़ी लगन के साथ करते रहे हैं। भूतपूर्व राष्ट्रपति स्व. बाबू राजेन्द्र प्रसाद जी ने उन की बहुत प्रशंसा की थी। उन्हों ने कहा था—"हिंदी-प्रचार के इतिहास में श्री सत्यनारायण जी की सेवाओं का बड़े गौरव और सम्मान के साथ उल्लेख किया जाएगा।" दरअसल उन का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और प्रशंसनीय रहा भी है। मेरा उन का साक्षात् सन १९३४ में हुआ था, जब कि वह 'विशाल भारत' कार्यालय (कलकत्ता) में पधारे थे। तत्पश्चात् मैं ने उन के साथ उसी वर्ष कर्नाटक प्रदेश की यात्रा भी की थी और वहां हिन्दी-प्रचार के कार्य को देखा था। हमारी मातृ-भाषा पर उन का असाधारण अधिकार है और वह उस में धारा-प्रवाह भाषण भी दे सकते हैं। अपनी बातचीत में उन्हों ने हिन्दी-प्रचार के कई ऐसे पहलुओं पर प्रकाश डाला है, जिन्हें हम हिन्दी वाले सर्वथा भूल जाते हैं। ऐसे अवसर पर, जब कि राष्ट्रभाषा का प्रश्न जनता तथा सरकार के सामने है, सत्यनारायण जी-जैसे अधिकारी व्यक्ति के विचारों का विशेष महत्व है।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

(चित्र दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के सौजन्य से प्राप्त)

प्रश्नकर्ता—बनारसी दास चतुर्वेदी

उत्तरदाता—मोटूरि सत्यनारायण

दो संसद-सदस्यों की हिन्दी-वार्ता

प्रश्न :— हिन्दी का प्रश्न आजकल समस्त भारत को आन्दोलित करता रहा है। आप जानते ही हैं कि इस के कई पहलू हैं। मैं उत्तर प्रदेश का निवासी हूं और आप आंध्र प्रदेश के। चूंकि हम लोगों का सम्बन्ध गत तीस वर्षों से रहा है, इस लिए पारस्परिक विचार-परिवर्तन करना अत्यन्त आवश्यक है। सम्भवतः हम लोगों के दृष्टिकोण में कुछ मतभेद हो, या हम लोगों के विचार परस्पर पूरक हों, इस कारण यह विचार-विनिमय और भी आवश्यक हो गया है। बिना लम्बी भूमिका के मैं आप से एक बात कहना चाहता हूं। आप जानते ही हैं कि मैं बहुत वर्षों से इस बात पर जोर देता रहा हूं कि हिन्दी का प्रश्न केवल उत्तर भारत का ही नहीं, सम्पूर्ण देश का रहा है और गलतफहमियों से दूर रहने के लिए तथा सफलता प्राप्त करने के लिए भी, हिन्दी-प्रचार का कार्य मुख्यतः अहिन्दी भाषा-भाषियों पर ही छोड़ देना चाहिए। इस विषय में आप के विचार क्या हैं?

उत्तर : जिस दृष्टिकोण से हिन्दी-प्रचार का कार्य आप अहिन्दी-भाषियों पर छोड़ना चाहते हैं, मेरे ख्याल में आप एक सीमित दृष्टि से यह कह रहे हैं, अर्थात् हिन्दी वाले हिन्दी-प्रचार पर जोर दें, तो इस की प्रतिक्रिया अहिन्दी वालों के ऊपर अवांछनीय हो सकती है। लेकिन मेरा यह दृष्टिकोण इस विषय में एक दूसरा भी है वह यह है कि अहिन्दी वाले (जहां तक हिन्दी-राज्यों से ताल्लुक है) अपने को भिन्न समझते हैं। लेकिन क्या आजकल उन के बीच में, जहां तेलुगु, तमिल, मलयालम, कन्नड़ आदि भाषाएं बोली जाती हैं, उन्हें आपस में मिलाने के लिए कोई भाषा है? आप जानते हैं कि ये भाषाएं बहुत ही पुरानी, विकसित और व्यापक हैं; और आजकल इन भाषाओं को अलग-अलग अपना-अपना राज्य-क्षेत्र भी प्राप्त हो गया है। वे एक-दूसरे के पड़ोसी ही नहीं, बल्कि सदियों से उन भाषा-भाषियों के बीच गहरा सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक सम्बन्ध भी रहा है। एक जमाना था जब कि उच्च स्तर पर सांस्कृतिक या राजनीतिक कार्य होता था तो सीमित क्षेत्र में काम करने के लिए या तो वे संस्कृत को काम में लाते थे या दुभाषियों को रखते थे। देश की व्यावहारिक भाषा अंग्रेजी होने के बाद आजकल यह कार्य अंग्रेजी के जरिए हो रहा है। यह मानी हुई बात है कि आज न सही तो दस साल के बाद, अंग्रेजी हमारे सामाजिक क्षेत्र से हटेगी और कम से कम वह ऐसे व्यापक रूप में न रह सकेगी, जैसे वह आज है। तब ये राज्य आपस में किस माध्यम के जरिए काम करेंगे, उन्हें कोई ऐसी देशी भाषा चाहिए, जिस के द्वारा एक-दूसरे के साथ सम्पर्क अपने कार्य-कलाप में बनाए रख सकें। मैं कोई ऐसी भाषा नहीं देखता, जिसे दक्षिण भारत स्वयं अपने आपस की भाषाओं में से आम भाषा के तौर पर चुन ले, या संस्कृत को वह स्थान दे या अंग्रेजी को व्यापक रूप में बनाए रखे। सिवाय हिन्दी के उन के लिए कोई दूसरी भाषा ऐसे काम की नहीं होगी, जिस से वे अपना सारा कार्य राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक दृष्टि से सफल बना सकें। इस दृष्टि से हम सार्वदेशिक एकता के साथ-साथ पारस्परिक एकता भी बनाए रखने के लिए हिन्दी की आवश्यकता तथा वांछनीयता को दक्षिण में महसूस करने लगे हैं। अगर हिन्दी हम लोगों का यह काम न कर सके, और वह सिर्फ केन्द्रीय शासन और प्रान्तीय शासन के बीच के सम्पर्क में कड़ी ही बनी रहे, तो मैं उस में देश की एकता के लिए खतरा देखता हूं।

प्रश्न : क्या कृपा कर आप इसे और साफ तरह से व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर समझा सकेंगे?

उत्तर : मैं इस का उत्तर और स्पष्ट रूप से आप चाहें तो यों दूंगा। मिसाल के लिए आप आंध्र प्रदेश को लीजिए। आंध्र प्रदेश पांच भाषा-भाषियों से घिरा हुआ है। पूर्व में उड़िया, उत्तर में हिन्दी, पश्चिम में मराठी, और कन्नड़, और दक्षिण में तमिल। इस के अलावा आंध्र प्रदेश में कितने ही ऐसे लोग बसे हुए हैं जिन की मातृभाषा तेलुगु नहीं है। अगर आंध्र प्रान्त के लोग अपने पड़ोसियों से निकट-सम्पर्क रखना चाहें तो उन के लिए संभव नहीं कि वे अपनी पांचों पड़ोसी भाषाओं को सीखें। यह तो बहुत बड़ा बोझा है। इन भाषाओं के अलावा संस्कृत और अंग्रेजी भी उन्हें सीखनी ही पड़ेगी। अपने पड़ोसियों से वे हिन्दी के द्वारा काम निकाल सकें, जो उत्तर और दक्षिण को जोड़ने वाली कड़ी है, पड़ोसियों को भी जोड़ने की कड़ी बन जाए, तो इस में सब को लाभ ही लाभ है। इस का मतलब यह निकला कि अब तक हम हिन्दी के सवाल को उत्तर और दक्षिण की दृष्टि से जो देख रहे हैं, वह अधूरा ही नहीं बल्कि भ्रमोत्पादक भी था। इस भ्रम को दूर करने के लिए अब हिन्दी-प्रान्त के निवासियों को अहिन्दी-प्रांतों में हिन्दी-प्रचार के कार्य को उन के ही ऊपर छोड़ देना चाहिए। अगर हिन्दी वाले इस पर बार-बार न कहें, तो स्वयं अहिन्दी प्रान्त वाले अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए हिन्दी सीखने लगेंगे, और उन्हें अत्यधिक लाभ होगा।

प्रश्न: यह तो एक नया दृष्टिकोण मालूम होता है, जो अब तक हमारे सामने नहीं आया था। यह एक दिशा की अपेक्षा दूसरे पर अधिक जोर देता है, और अब तक हमारी दृष्टि से ओझल था। ऐसी परिस्थिति में केन्द्रीय सरकार क्या कर सकती है? आप जानते हैं कि हिन्दी के राज-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित होने के बाद भी हिन्दी और अहिन्दी वालों के बीच में एक गैर-समझी पैदा हो गई। हिन्दी को भी राजभाषा का स्थान मिला ही है और उसे इस पद पर रखते हुए इस गैर-समझी को दूर करने और हिन्दी के प्रचार और प्रसार को बढ़ाने के लिए क्या आप कोई व्यावहारिक योजना सुझा सकते हैं?

उत्तर: हां, जहां तक मैं इस सवाल को समझ पाया हूं, आप के प्रश्न का उत्तर मैं यों दूंगा। आज केन्द्रीय सरकार दिल्ली में ही अवस्थित है, ऐसा नहीं समझा जाना चाहिए। यह समझना आवश्यक है कि दिल्ली सरकार का काम समूचे भारत में फैला हुआ है। शायद आप को मालूम हो, किसी-किसी राज्य में केन्द्रीय सरकार की तरफ से काम करने वालों की संख्या क्षेत्रीय राज्य के सरकारी कर्मचारियों की संख्या से कहीं ज्यादा है। इस हालत में किसी राज्य में केन्द्रीय सरकार अपने कर्मचारियों के द्वारा सार्वदेशिक तथा प्रादेशिक कार्यक्रम के लिए एक सुलभ उपयोगी माध्यम से काम लेना चाहे, तो न तो वह प्रादेशिक भाषा से काम ले सकती है न अंग्रेजी से; क्यों कि अंग्रेजी को तो क्षेत्रीय सरकारें छोड़ रही हैं और प्रादेशिक भाषा को अपना रही हैं। ऐसी हालत में चौदह भाषाओं में केन्द्रीय सरकार काम नहीं कर सकती। न तो यह व्यावहारिक है न यह सुलभ-साध्य। इस लिए नई कड़ी की आवश्यकता उन्हें पड़ेगी और यह कड़ी प्रादेशिक और सार्वदेशिक कार्य को सम्पन्न करने के लिए हिन्दी ही हो सकती है। दूसरे शब्दों में केन्द्रीय सरकार को चाहिए कि पहले पहल भिन्न-भिन्न राज्यों में काम करने वाले कर्मचारियों को हिन्दी के द्वारा काम कराने का प्रयत्न करे। यह काम दिल्ली से नहीं होना चाहिए, बल्कि दिल्ली से

(शेष पृष्ठ ४७ पर)

राष्ट्रीय अभिलेखागार भारत National Archives of India

एक कहे और दूसरा समझे

- डा० गार्गी गुप्त

अब जब संसद में अंग्रेजी को अनिश्चित काल के लिए 'अतिरिक्त' राजभाषा बनाने सम्बन्धी विधेयक विपुल बहुमत से स्वीकार हो गया है तो उसे ले कर वाद-विवाद करने अथवा हिन्दी-अंग्रेजी की समस्या को ले कर हाहाकार करने और उदास अथवा उत्तेजित होने से कोई लाभ नहीं। देखना और समझना तो यह है कि इस का मूल कारण क्या है, उस का उपाय और समाधान क्या है। राजनीतिक कारणों को यदि हम छोड़ दें तो इस का मुख्य कारण है—पन्द्रह वर्षों की स्वाधीनता के बाद भी आज हिन्दी के इतने सबल और लोकप्रिय रूप का अभाव कि जन-जन में उस के प्रति प्रेम तथा आस्था जाग उठती। आज यदि हमारे यहां हिन्दी का एक अखिल भारतीय सरल तथा सुबोध रूप सुलभ होता तो कदाचित उसे अंग्रेजी से इतना कठोर संघर्ष न करना पड़ता।

हिन्दी के एक सर्वग्राह्य रूप के प्रसंग में वस्तुत: अहिन्दी-भाषियों की तो बात ही जाने दीजिए, उन में सम्भवत: इतना विरोध न मिलेगा, परन्तु स्वयं हिन्दी-भाषियों में कई मत मिल जाएंगे। कुछ लोग यदि संस्कृत को प्राचीन ज्ञान-विज्ञान की भाषा तथा अधिकांश प्रादेशिक भाषाओं की जननी भाषा होने के कारण हिन्दी में संस्कृत के तत्सम रूपों की प्रधानता पर जोर देते हैं, तो कुछ लोग संस्कृत के कठोर व्याकरण से घबरा कर भाषा को उस से मुक्त करने की मांग करते हैं। कुछ लोग भाषा में उर्दू शब्दों के बाहुल्य पर जोर देते हैं, तो कुछ देवनागरी को अंग्रेजी का परिधान पहनाने की मांग करते हैं। ऐसी स्थिति में सरल तथा सुबोध हिन्दी की एक सर्वमान्य परिभाषा स्थिर करना वास्तव में टेढ़ी खीर है।

यों भाषा की सरलता की मांग न तो कोई नई बात ही है और न ही यह किसी भाषा अथवा देश-काल की सीमा से आबद्ध है। भाषाओं के इतिहास से स्पष्ट पता चलता है कि जब-जब और ज्यों-ज्यों भाषा का रूप जटिल तथा शास्त्रीय होता गया है तब-तब उस के विरुद्ध एक जन-भाषा की मांग उठ खड़ी हुई है। संस्कृत से प्राकृत, अपभ्रंश से पाली और पाली से निस्सृत अनेकानेक भाषाएं इस का जीवन्त प्रमाण हैं। बहुत पहले ही साहित्य दर्पण-कार ने लिखा था :—

शब्दास्तद्व्यञ्जका अर्थबोधका: श्रुतिमात्रत:

अर्थात्, सुनते ही जिन का अर्थ स्पष्ट हो जाए, ऐसे सुबोध और सरल शब्द प्रसाद के व्यंजक होते हैं।

उर्दू के सुप्रसिद्ध महाकवि अकबर ने भी कहा है :

बयां ऐसा कि दिल माने, जबां ऐसी कि सब समझें।

परन्तु हिन्दी के सम्बन्ध में आज यह समस्या कुछ अधिक कठिन है, विशेष रूप से इसी लिए क्यों कि पहले तो उसे दो सौ वर्षों से यहां अपने अंगदी पैर जमाए एक सशक्त भाषा अंग्रेजी से टक्कर लेनी है और दूसरे उसे भारत की सभी प्रादेशिक भाषा-भाषियों की सुविधा के अनुरूप स्वयं को ढालना है।

आज हम स्पष्ट अनुभव कर रहे हैं कि इस समय हिन्दी जो मोड़ ले रही है, उस से वह बोलचाल की भाषा से दूर पड़ कर दुरूह तथा संस्कृत-गर्भित होती जा रही है। यह ठीक है कि उस में यह मोड़ उर्दू अथवा अंग्रेजी से विरोध या स्पर्धा के कारण नहीं, बल्कि कतिपय प्रादेशिक भाषाओं की प्रकृतिगत आवश्यकताओं तथा उन के सहयोग के कारण ही आया है, पर स्मरण रहे कि संस्कृतनिष्ठ भाषा शुद्ध हिन्दी का आदर्श तो हो सकती है, पर सर्वसाधारण की भाषा नहीं बन सकती।

इस सम्बन्ध में सब से पहले हमें यह समझ लेना चाहिए कि संस्कृत आज से नहीं, बल्कि बहुत प्राचीन काल से ही अधिकांश भारतीय भाषाओं की आदि जननी रही है और आज उन में संस्कृत की तत्सम शब्दावली का जितना प्रयोग होता है, प्राचीन काल में उस से कहीं अधिक होता था। फिर भी एक लोक-भाषा और लोक-भाषा-साहित्य की आवश्यकता का अनुभव निरन्तर होता रहा है। तुलसी ने मानस का प्रणयन जन-भाषा में किया और कबीर ने अपने उपदेश जन-भाषा में दिए। यहां तक कि संस्कृत के महान विद्वान केशवदास ने भी भाषा में ही काव्य-शास्त्र की रचना की। संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होने के नाते उन्हों ने यदा-कदा भाषा में संस्कृत शब्दों और व्याकरण का एक नया प्रयोग करने का प्रयत्न भी किया था जैसे विनयता, पावनता, अदीयमान, निर्जेच्छया, उरसि आदि अनेक शब्द; परन्तु लोक-व्यवहार ने सिद्ध कर दिया है कि ऐसे शब्द अन्तत: 'असाधु' प्रमाणित हुए और उन का प्रचलन न हो सका।

फिर आज हिन्दी जिन प्रदेशों की भाषा है, स्वयं उन्हीं में उर्दू (फारसी-अरबी-तुर्की), अंग्रेजी, चीनी, पुर्तगाली आदि कई भाषाओं के सैकड़ों ऐसे शब्द हैं, जिन्हें सर्वसाधारण खूब बोलते हैं और जिन्हें बच्चा-बच्चा समझता है। हिन्दी में संस्कृत के तत्सम अथवा तद्भव रूप बन गए हैं और समान रूप से व्यापक तथा प्रचलित हैं। ऐसी स्थिति में उन को हिन्दी भाषा का शब्द न समझना अथवा उन के स्थान पर संस्कृत शब्दों का लाना, मैं समझती हूं दुराग्रह के अतिरिक्त और कुछ नहीं। ट्राम, बस, निब, चपरासी, लीची, लहसुन, गोभी, जमींदारी आदि कितने ही विदेशी शब्द हम प्रति दिन बोलते हैं और यदि हम चाहें तो इन सुप्रचलित शब्दों के स्थान पर संस्कृत के पर्यायवाची शब्द गढ़ कर रख भी सकते हैं, परन्तु इस से लाभ क्या होगा! कुछ शिक्षित लोग प्रयास कर के उन्हें भले ही समझ लें, परन्तु सर्वसाधारण की भाषा तो वह न हो सकेगी। इन शब्दों के यथार्थ पर्यायवाची शब्द तो संस्कृत में हैं नहीं, कई शब्दों की व्याख्या अथवा उन का निकटतम अनुवाद ही करना होगा, जो अनावश्यक भी है और अवांछनीय भी, जैसे हम 'फुटबाल' को 'चरण-कन्दुक' या 'पैर-गेंद' और 'ग्रामोफोन' को 'लिखित भाष' कहें। वास्तव में ये विदेशी शब्द हमारी भाषा के अविच्छिन्न अंग बन कर इन्द्र-धनुष के रंगों के समान परस्पर इस प्रकार मिलजुल गए हैं कि उन के सन्धि-स्थलों का पता भी नहीं लगता। इस लिए ऐसे शब्दों से बचना या उन के प्रयोग में आना-कानी करना हिन्दी की शब्द-श्री को समृद्ध करने के स्थान पर विपन्न करना ही होगा। एक उदाहरण लें :

फिर **पुलिस** का कोई बड़ा अफसर आया। उस के साथ एक **डाक्टर** था। **डाक्टर** की भी राय थी और **पुलिस कप्तान** की भी कि लाश को अस्पताल ले जाया जाए, ताकि चीर-फाड़ कर मामले की पूरी जांच हो सके।

आज हम स्पष्ट अनुभव कर रहे हैं कि इस समय हिन्दी जो मोड़ ले रही है, उस से वह बोलचाल की भाषा से दूर पड़ कर दुरूह और संस्कृतगर्भित होती जा रही है। क्या फुटबाल को 'चरण-कन्दुक' और ग्रामोफोन को 'लिखित-भाष' कहना उचित होगा?

अब यदि हम इस वाक्य में प्रयुक्त विदेशी शब्दों के स्थान पर शुद्ध संस्कृत के शब्द रख दें तो क्या वह भाषा एक सामान्य जन की समझ में आ सकेगी? उस का परिणाम असुविधा, क्लिष्ट कल्पना और भाषा की जटिलता के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा। आज अंग्रेज यहां से चले गए इस लिए हम, बस, सिगरेट, लालटेन, डाक, बटन, पोस्टकार्ड, डी. डी. टी., पेनिसिलीन आदि सैकड़ों अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग न करें, मुसलमानों ने पाकिस्तान ले कर अलग देश बसा लिया इस लिए कुर्की, चश्मा, सरकार, दुकान, दफ्तर, कागज, कैंची, शिकायत आदि उर्दू शब्दों का बहिष्कार कर दें, पुर्तगाली देश से भाग गए इस लिए 'गमलों' में फूल लगाना छोड़ दें और 'सन्तरे', 'काजू', 'गोभी' खाना छोड़ दें, स्पेन से हमारा कोई नाता नहीं, इस लिए अपने सलाद में से 'टमाटर' निकाल दें और चीन ने हमारे पंचशील के सिद्धान्त का अपमान कर हमारे साथ विश्वासघात किया इस लिए हम 'चाय' पीना और 'लीची' तथा 'लहसुन' खाना बन्द कर दें, तो इस तरह विदेशी शब्दों के बायकाट की कोई सीमा नहीं रह जाएगी। जब शिक्षित-अशिक्षित सभी इन शब्दों को भली-भांति समझते हैं, तो इन के प्रयोग में संकोच क्यों हो, समझ में नहीं आता।

स्वयं अंग्रेजी में हिन्दी के कितने शब्द ज्यों के त्यों गए हैं, कोई गिनती है? अंग्रेजी के किसी भी कोष को उठा कर देख लीजिए, केवल 'एक' अक्षर के पृष्ठ पर ही हिन्दी के महुआ, महावत, महाराज, महारानी, महन्त आदि कई शब्द अपने मौलिक रूप में ज्यों के त्यों मिल जाएंगे। सच तो यह है कि यदि हम किसी भी विकसनशील भाषा के इतिहास पर दृष्टि डालें तो स्पष्ट पता चलता है कि उन का विकास तभी सम्भव हुआ है, जब उन के बोलने वालों ने अपनी भाषा के वातायन बाहरी शब्द-वायु के प्रवेश के लिए खुले रखे हैं, अन्यथा वे मृत हो कर केवल इतिहास के पृष्ठों में ही अवशिष्ट रह गई हैं।

यह बात देशी-विदेशी सभी भाषाओं के सम्बन्ध में समान रूप से सच है। फ्रेंच ने अंग्रेजी से बेबी, ब्रिज, क्लब, सेन्डविच, फिल्म, वैगन, बाक्स आदि शब्द लिए तो जर्मन ने आइसक्रीम, पार्टी, ड्रिंक आदि, इतालवी ने कोल्डक्रीम, फुटबाल, ट्रमारो, पुलोवर, बबलगम जैसे बहुत से शब्द ज्यों के त्यों अथवा कुछ ध्वनि परिवर्तनों के साथ स्वीकार कर लिए। उधर पूर्व में जापानी ने भी अनगिनत अंग्रेजी शब्द अपनी भाषा में ले लिए हैं, जैसे—सलाद, बियर, व्हिस्की, काफी, नाइफ, नेपकिन, टैक्सी, बस, नेकटाई, डान्स, सिगरेट, कोका-कोला, कोक्टेल, टेलीफोन आदि। नाइलोन और कोकाकोला शब्द तो सम्भवत: विश्व की सभी भाषाओं ने ज्यों के त्यों अपना लिए हैं। अंग्रेजी के सम्बन्ध में भी कौन नहीं जानता कि किसी समय योग तथा तत्व-शास्त्र की सम्पूर्ण पारिभाषिक शब्दावली उस ने भारत से ज्यों की त्यों उधार ले ली थी।

प्राचीन काल में संस्कृत ने भी 'केन्द्र' शब्द ग्रीक भाषा से लिया था। हिन्दी के लिए भी विदेशी शब्दों का प्रयोग कोई नई बात नहीं है। हिन्दी-साहित्य के आदिकाल के महान ग्रन्थ 'पृथ्वीराजरासो' की भाषा के सम्बन्ध में स्वयं चन्दवरदाई ने लिखा है :

षट्भाषा पुराणं च कुरानं कथितम् मया।

यहां कुरानं से स्पष्ट ही आशय अरबी-फारसी के शब्दों से है, परन्तु इन 'मलेच्छ' शब्दों के रहते हुए भी 'पृथ्वीराजरासो' हिन्दी का ग्रन्थ है, अरबी अथवा फारसी का नहीं। 'रामचरितमानस' जैसे धर्म-ग्रन्थ के रचयिता तुलसीदास को राम का 'गुलाम' बनने में संकोच नहीं हुआ और आज के शुद्धतावादी भी अपनी समस्त शुभेच्छाओं के बावजूद इतालवी रोगों—इनफ्लुएंजा और मलेरिया के शिकार होने से बच नहीं पाते, तो फिर शुद्ध भाषा की हठधर्मी से लाभ ही क्या है?

यह तो हुई दैनिक बोलचाल की भाषा की बात। यहां मैं पारिभाषिक शब्दावली के सम्बन्ध में भी कुछ कहना चाहूंगी। यह सही है कि लोक-भाषा और विषय-भाषा की गम्भीरता के कारण वैज्ञानिक तथा प्राविधिक भाषा में कुछ अन्तर का होना आव-

राष्ट्रीय अभिलेखागार भारत National Archives of India

श्यक है, परन्तु फिर भी इस में कोई सन्देह नहीं कि आज जो पारिभाषिक शब्दावली बनाई जा रही है उस में अभिव्यक्ति की सुगमता की अपेक्षा रूप की शुद्धता पर अधिक बल दिया जा रहा है। परन्तु लोकरंजक अथवा प्रचार-साहित्य के लिए भाषा का सरल होना जितना आवश्यक है, ज्ञान-विज्ञान की भाषा का भी सरल होना उतना ही आवश्यक है। इस समय विज्ञान के क्षेत्र में जो अनुवाद (अधिक) और मौलिक लेखन (कम) हो रहा है, उस की भाषा प्राय: कठिन और बोझिल होती है और यह कार्य अधिकांश एक यान्त्रिक पद्धति से होता है।

मैं मानती हूं कि संस्कृत हमारी कई प्रादेशिक भाषाओं की 'आकर भाषा' है, और उस में पारिभाषिक शब्दावली निर्माण की अद्भुत और असीम क्षमता भी है, परन्तु फिर भी हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भारत में तमिल जैसी द्रविड़ भाषा और उर्दू जैसी विदेशी भाषाओं को राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त है और हम उन की एकदम अवहेलना नहीं कर सकते। दूसरे यह केवल संयोग की बात है कि कुछ राजनीतिक परिस्थितियों के कारण भारत विज्ञान के नित्य नए अनुसन्धानों के क्षेत्र में पिछड़ गया। परन्तु आज हम स्वाधीन हैं और वैज्ञानिक उन्नति करने के लिए हमारे सामने विशाल क्षेत्र और अवसर हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आज यदि हम विदेशी पारिभाषिक शब्दों के ग्रहण में देर न कर यदि जल्दी से जल्दी समस्त विदेशी साहित्य को अपने देशवासियों के लिए उपलब्ध कर सकें तथा पूरी तन्मयता और ईमानदारी से अध्ययन, मनन तथा अनुसन्धान कर यह प्रयास करें कि जल्दी ही हम केवल अंग्रेजी को ही नहीं, बल्कि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर विश्व की सभी भाषाओं को नई-नई संकल्पनाएं और नए-नए भारतीय शब्द दे सकें तो मुझे पूरा विश्वास है कि यह अधिक स्वस्थ दृष्टिकोण होगा और अतीत के समान ही विश्व भविष्य में भी भारत का लोहा मानेगा और तब हमारी शब्दावली ही अन्तरराष्ट्रीय शब्दावली बन जाएगी।

यह सब कहने का मेरा आशय यह नहीं है कि संस्कृत से मेरा कोई बैर-विरोध है। संस्कृत के प्रति मेरी भी उतनी ही श्रद्धा है, उस के प्रति मुझे भी उतना ही मोह है, जितना अन्य किसी भारतवासी को। परन्तु संसद में जिस प्रकार हिन्दी-अंग्रेजी राजभाषा विधेयक बहुमत से स्वीकृत हुआ है और जिस प्रकार हमारे कोषकार अभी तक पारिभाषिक शब्दावली के सम्बन्ध में किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाए हैं, उस से स्पष्ट है कि न तो अभी हिन्दी के प्रति लोगों में पर्याप्त आस्था ही जागी है और न ही विदेशी वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद-कार्य सफल ढंग से आगे बढ़ पाया है। जो कुछ काम हुआ है उस के पढ़ने वाले और समझने वाले बहुत कम हैं, क्यों कि उन की और बोलचाल की भाषा में आकाश-पाताल का अन्तर है और दूसरे वे पारिभाषिक शब्द विदेशी संकल्पताओं के केवल निकटस्थ अनुवाद भर होते हैं, मूल की हू-ब-हू संकल्पना उन में नहीं आ पाती। इस लिए मैं समझती हूं कि जो संकल्पनाएं अथवा अनुसन्धान भारतीय नहीं हैं, फिर चाहे वे अंग्रेजी हों या रूसी, फ्रैंच हों या

(शेष पृष्ठ ४८ पर)

गीत

—भारत भूषण—

आंख में आंसू न लाना।
है शहीदों की सभा यह धूल माथे से लगाना।
ये शिलाओं की कतारें
मौन स्तब्ध समाधियां हैं।
घाव की गहराइयों से
होड़ लेती घाटियां हैं।
बर्फ पर लिखती किरन वे
नाम, अब गुमनाम हैं जो।
बुझ गए हैं दीप, पर
इतिहास कहती बातियां हैं।
सुन सको यदि शब्द कोई शपथ है मत भूल जाना।
ओ पवन धीरे बहो, ये
राखियां रूठी पड़ी हैं।
बूंद-बूंद पिघल हिमालय
लोरियां टूटी पड़ी हैं।
ये पुंछे सिन्दूर के कण
खण्ड नूपुर चूड़ियों के।
राजपथ से गांव तक की
मस्तियां फूटी पड़ी हैं।
चंद के-से छंद हैं ये अधर पर सादर सजाना।
पुत्र जिस के थे उसी की
गोद में सोए हुए हैं।
अग्नि बन कर जो उगें,
वे रक्त-कण बोए हुए हैं।
मौत अपनी भी उमर खुद
दे गई इन लाड़लों को।
ये अमर मृत्युञ्जयी हैं,
स्वप्न में खोए हुए हैं।
शोर मत करना यहां पर, पाप सोते को जगाना।
आंख में आंसू न लाना।

फिर परेशानी क्यों?

—वियोगी हरि

उद्घाटन और शिलान्यास अनिवार्य हैं लेकिन ...

वार्षिक सम्मेलन करने का सोचा गया है—खूब अच्छे समारोह के साथ। योजना सारी बना ली है। खर्च का अंदाज भी लगा लिया है। तिथि बहुत दूर नहीं। कितनी सारी तैयारियां करनी हैं। पर चिन्ता नहीं, मित्र और सहयोगी सभी जुट जाएंगे। स्थान तो ध्यान में है ही। मंच वहां खासा सुन्दर बनाएंगे। सांस्कृतिक कार्यक्रम भी रहेगा। तब उपस्थिति तो अच्छी होगी ही।

प्रश्न एक ही है, जो परेशान-सा कर रहा है। उद्घाटन किस से कराया जाए? बिना उद्घाटन के सम्मेलन की शोभा नहीं, यह अत्यन्त आवश्यक है। पर इसे करेगा कौन? इतना तो निर्विवाद है कि उद्घाटक राज्य का कोई-न-कोई मंत्री होना चाहिए। पर अवकाश उन्हें कहां? बीस दिन तक सारे ही मंत्री 'बुक्ड' हैं। उन के सामने उद्घाटनों, शिलारोपणों और अध्यक्षताओं की काफी लम्बी फेहरिस्त पड़ी है। वचन देने में वे इतने अधिक उदार हैं कि कोई भी जा पहुंचे, उस की प्रार्थना को अस्वीकार नहीं करते। कितना व्यस्त समय रहता है उन का! सचिवालय में बैठ कर जरूरी फाइलें उलटने-पलटने का भी समय नहीं मिल रहा। दया आती है उन पर। लेकिन उद्घाटन तो सम्मेलन का कराना ही होगा। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि सम्मेलन का कार्यक्रम शुरू कर दिया जाए, भाषण हो जाए, प्रस्ताव भी पास करा लिए जाएं, और उद्घाटन की विधि सब से पीछे आधी रात को रखी जाए? उदारतापूर्वक वह समय कोई-न-कोई मंत्री महोदय निकल कर अवश्य दे सकते हैं।

रहेगा भी यह अच्छा। लोग अन्त तक उन के दर्शनार्थ वहां जमे रहेंगे। नहीं तो जैसे ही उद्घाटन सम्पन्न हुआ कि आधी से अधिक जनता मंत्री के साथ ही उठ कर चली जाएगी। अत: यह कोई आवश्यक नहीं कि उद्घाटन की विधि आरम्भ में ही कराई जाए।

तथापि, यह सारा सोचने में परेशानी तो होती ही है।

प्रशिक्षण-शिविर लगाना भी निश्चित हुआ है, और यह जल्दी ही करना है, क्यों कि वित्तीय वर्ष का यह आखिरी महीना है। यह मार्च मास बड़ा पवित्र माना गया है। सद्य: फलदायक है यह। सेमिनार भी साथ ही रख लिया जाएगा। शिविर दस दिन का, पांच-सात दिन का और तीन दिन का भी हो सकता है। प्रशिक्षण देना ही तो है, कुछ लेना तो है नहीं। सीखने की अपेक्षा सिखाना हमेशा ही आसान रहता है। ढांचा पहले से सारा तैयार है ही। कहीं भी उस में फेर-फार करने की जरूरत नहीं। गत वर्षों की तरह ही तो होगा शिविर।

चिन्ता बस एक ही है। उद्घाटन करने वाला तो कोई-न-कोई राज्-सत्ताधारी मिल जाएगा। किन्तु शिविरार्थियों के सामने नित्य भाषण देने वालों के नाम पहले से तय कर लेने होंगे। कुछ-न-कुछ बौद्धिक खुराक उन्हें मिलनी ही चाहिए। फिक्र नहीं कि खुराक वह कैसी होगी। शिविर के उद्देश्य के विपरीत भी वे भाषण दे सकते हैं। कुछ भी बोलें, श्रद्धापूर्वक उन के भाषण सुनने होंगे और उन से प्रशिक्षण लेना होगा।

फिर भी वक्ताओं को सोचने और उन्हें बुलाने में परेशानी तो आयोजकों को होती ही है।

और, ऐसी ही परेशानी उस समय भी होती है, जब किसी मूर्ति या चित्र का अनावरण कराने के लिए सोचना पड़ता है, कि ऐसे शुभ अवसर पर आखिर किसे बुलाया जाए।

परेशानी कितनी ही हो, सम्मेलनों और शिविरों के उद्घाटन, भवनों के शिलारोपण और मूर्तियों एवं चित्रों के अनावरण अनिवार्य हैं। और इन धार्मिक विधियों के लिए पुरोहित भी ऐसा होना चाहिए, जो दक्षिणा में यजमान का सारा पुरुषार्थ और तेजस् छीन कर, आशीर्वाद-स्वरूप उसे राज्य से यथेच्छ अनुदान दे या दिला सके।

तब, फिर परेशानी कैसी?

राष्ट्रीय अभिलेखागार भारत National Archives of India

सफल पत्रकार और सुलेखक :

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

प्रभाकर जी में अजात-शत्रु के भी गुण हैं उन की सहृदयता, विनम्रता और मधुरता के कारण विरोधी भी उन पर मोहित हो जाते हैं।

–घनश्याम नारायण सिंह

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' उन व्यक्तियों में से हैं, जो नए लेखकों को प्रकाश में लाने का कार्य करते हैं; उन की रचनाओं में संशोधन करते हैं और उन का उचित मार्ग-दर्शन भी करते हैं किन्तु इस पाठशाला का संचालन करने के लिए वह न कोई फीस ही लेते हैं और न विद्यार्थियों की संख्या बढ़ाने के लिए कोई आत्म-विज्ञापन ही करते हैं। हिन्दी का शायद ही कोई बड़ा या छोटा लेखक हो जिस की कोई रचना प्रभाकर जी द्वारा सम्पादित 'नया जीवन' में प्रकाशित न हुई हो या उस के विषय में इस पत्रिका में कुछ लिखा न गया हो। प्रभाकर जी का सम्भवतः यही सहृदय व्यवहार है कि उन के कहने पर लेखक बगैर पारिश्रमिक के ही अपनी रचनाएं उस में भेज देता है—लेखकों का विश्वास रहता है, 'नया जीवन' में छप कर उन का सही मूल्यांकन होगा।

अपने पत्रकारिता के जीवनकाल में वह लेखकों के लिए एक प्रकाश-स्तम्भ की भांति कार्य करते रहे हैं।

मेरा अपना विचार है, 'नया जीवन' का प्रारम्भ किसी व्यापारिक उद्देश्य से नहीं किया गया। हिन्दी के इस मनीषी सम्पादक को इस बात का संतोष है कि उस ने हिन्दी को लोकप्रिय बनाने के प्रयत्न में उस की अपनी शैली ही नहीं अपितु उस के पत्र ने भी योगदान दिया है। जीवन की छोटी-सी घटनाएं किस प्रकार राष्ट्रीय समस्याओं का रूप ले लेती हैं, चरित्र का निर्माण किस प्रकार छोटी-छोटी घटनाओं को ले कर हुआ करता है, इस को सिद्ध करने की कला में प्रभाकर जी सिद्धहस्त हैं। जीवन की वे घटनाएं तथा वे साधारण व्यक्ति जो हमारे सम्पर्क में आते हैं तथा जिन्हें हम अवहेलना की दृष्टि से देख कर आगे बढ़ जाते हैं; इन्हीं सब घटनाओं और व्यक्तित्वों के प्रभाकर जी अमर शिल्पी हैं।

महापुरुषों पर तो सभी लिख लेते हैं लेकिन जो व्यक्ति महापुरुष बनने की योग्यता रखते हुए भी महापुरुष नहीं बन पाए, उन पर कितनों ने लिखा है?

प्रभाकर जी में अजातशत्रु के भी गुण हैं। उन की सहृदयता, विनम्रता और मधुरता के कारण विरोधी भी उन पर मोहित हो जाते हैं।

भारत की आजादी के बाद भी देश में हिन्दी को वह स्थान नहीं मिला जो एक आजाद देश की सर्वप्रमुख भाषा को मिलना चाहिए। हिन्दी के विषय में यही कहा जाता रहा कि देश के कई अंचलों में वह लोकप्रिय नहीं है। ऐसे सज्जनों से मैं यही निवेदन करूंगा कि वे जरा प्रभाकर जी के कार्यों का अवलोकन कर लें कि उन्हों ने किस तरह सहारनपुर-जैसे उर्दू-बहुल नगर में हिन्दी को लोकप्रिय बना रखा है। शायद देश में हिन्दी को और अधिक लोकप्रिय बनाने में यह कार्य, उन का सहायक हो।

'नया जीवन' की सम्भवतः कभी आर्थिक हालत ठीक नहीं रही, इस लिए लेखकों को हमेशा उस से पारिश्रमिक नहीं, प्रेम और प्रोत्साहन ही मिला है। फिर भी लेखक क्यों उस की ओर खिंचते हैं? प्रभाकर जी के कहने या न कहने पर भी रचनाएं क्यों भेज देते हैं क्यों कि शायद यह प्रेम और प्रोत्साहन दोनों सच्चे हैं। यही एक मजबूत डोर है जो लेखकों और प्रभाकर जी को 'नया जीवन' से बांधे हुए है। और यह सही है 'नया जीवन' से लेखकों को ही नहीं पाठकों को भी नया जीवन मिलता है।

प्रभाकर जी की रचनाओं को मैं ने कई-कई बार पढ़ा है क्यों कि उन की शैली इतनी चमत्कारपूर्ण होती है कि वह तो याद रह जाती है; विषय-वस्तु याद नहीं रहती। प्रभाकर जी के साहित्य में बहती हुई इस ज्ञान-गंगा को एक बार में पी लेना कोई सरल कार्य नहीं है। मेरा विचार है, उन का साहित्य पढ़ा जाए, आद्योपान्त पढ़ा जाए और बार-बार पढ़ा जाए। यही उस की सार्थकता है क्यों कि वह अपने को पढ़ने के लिए पाठकों को मजबूर कर देता है।

प्रभाकर जी से मेरा मिलन सहारनपुर में उन के प्रेस में ही हुआ था और यहीं मैं ने देखा कि अपने सम्पादकीय कक्ष में उन्हों ने देश के विभिन्न स्थानों से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं का जितना सुन्दर प्रदर्शन कर रखा है, वह अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं हो सकेगा। एक ही निगाह में दर्शक को पता चल जाता है कि देश में हिन्दी की कितनी प्रमुख पत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं। अपनी पत्रिका के प्रचार के लिए जो प्रकाशक ये धरोहर प्रभाकर जी को भेंट करते हैं; उन को वह कितनी पवित्रता के साथ सम्हाल कर रखते हैं।

मिशनरी पत्रकार

प्रभाकर जी में सम्पादन-कला-सम्बन्धी कुछ विशेष गुण हैं। सम्भवतः वह कुछ आदर्शों को ही ले कर इस क्षेत्र में आए थे। आज के युग में सम्पादक चाहता है कि उस के समक्ष जो प्रकाशनार्थ सामग्री आए वह पूर्णतः परिमार्जित हो, उस पर उसे कम-से-कम मेहनत या कुछ भी मेहनत न करनी पड़े लेकिन दूसरी ओर प्रभाकर जी हैं जो इन रचनाओं को ले कर पार्क में चले जाते हैं; आद्योपान्त पढ़ते हैं और आवश्यक हुआ तो सुधार पर सुधार करते हैं और फिर उसे छाप देते हैं।

यदि लोग पत्रकारिता को मिशन बनाना चाहते हैं तो इस तरह का परिश्रम अनुकरणीय ही कहा जाएगा।

हिन्दी के शब्दों को बड़े चमत्कारपूर्ण ढंग से प्रभाकर जी रखते हैं; वह शब्दों के शिल्पी हैं।

प्रभाकर जी ने सभी धर्मों का तुलनात्मक अनुशीलन किया है किन्तु साहित्य के क्षेत्र में वह इस से संचित ही रहे कारण प्रारम्भ में कतिपय कठिनाइयों के कारण वह अंग्रेजी या अन्य कोई विदेशी भाषा नहीं सीख पाए। लेकिन मैं सोचता हूं, हिन्दी को उन्हों ने जो शैली प्रदान की है, वह हर विदेशी साहित्यकार के वश की बात भी नहीं है। यह शैली उन्हों ने कहां से पाई? शायद उन के पुस्तकालय में जितनी पुस्तकें संरक्षित हैं यह उन सभी का निचोड़ है।

(हिन्दी के सुलेखक श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के जन्म-दिवस पर उन्हीं की कृतियों से चुने गए कुछ प्रेरक और दिशाबोधक विचार)

दिशाबोधक विचार

शाश्वत सत्य

अंधकार विराट है और दीपक लघु, पर यह निश्चित है कि जीवन का शाश्वत सत्य अंधकार नहीं, प्रकाश के लिए अंधकार से युद्ध है, जीवन के लिए मृत्यु से संघर्ष है।

उत्तम सत्य

जीवित रहने की शर्त है कुछ उत्पन्न करना, कुछ नया निर्माण करना, और यह उत्पत्ति, यह निर्माण जितना उत्तम, जितना विशिष्ट होगा, हमारा जीवन उतना ही उत्तम और उतना ही विशिष्ट होगा।

बेईमानी

बेईमानी आदमी की मजबूरी नहीं, एक आदत है। यह बुरी आदत बुरे वातावरण में, बुरी परिस्थिति में रहने से जन्म लेती है और फिर सदा की साथिन बन जाती है।

ईमानदारी

ईमानदारी की शर्त है, ईमानदारी का संस्कार, ईमानदारी के प्रति निष्ठा और ईमानदार रहने की तीव्र इच्छा।

सुनो, पढ़ो, देखो

बात सब की सुनिए, विचार सब के पढ़िए, दृश्य सब तरह के देखिए, पर सुन कर, पढ़ कर, देख कर ही उन के पीछे न दौड़िए; उन्हें अपने जीवन का, आचरण का अंग न बनाइए, जब तक आप उन की जांच-पड़ताल न कर लें, उन पर सोच-विचार न कर लें, उन्हें अच्छी तरह से परख न लें।

जीवन और मृत्यु

जीवन और मृत्यु के किनारों में बहने वाला प्रवाह ही जीवन है। किनारे न हों तो पानी इधर-उधर फैल कर प्रलय कर दे, नदी का रूप ले समुद्र में कहां पहुंचे।

जीवन की कृतार्थता

मृत्यु का सब से सुन्दर रूप है सत्य के लिए, न्याय के लिए, सुन्दर के लिए संघर्ष करते हुए मरना। ऐसा मरण ही जीवन की कृतार्थता है।

प्रजातंत्र की शर्त

समाज द्वारा अच्छाइयों को समर्थन और प्रोत्साहन एवं बुराइयों का प्रतिवाद और भर्त्सना जहां खुलेआम और निडर रूप में मिलती है, वहीं प्रजातंत्र पनपता है।

चयन : ज्योतिप्रकाश सक्सेना

योजना से शक्ति
शक्ति से सुरक्षा

राष्ट्रीय अभिलेखागार भारत National Archives of India

पर जा पहुंचे।

वह विशाल ठूंठ छिप कर बैठने के लिए बहुत उपयुक्त था। तेन्दुआ स्वभाव से बड़ा हठी और लालची होने के कारण अपने शिकार पर दुबारा अवश्य आता है। अपने किए हुए शिकार को रखने के लिए भी उस ने निरापद स्थान का चुनाव किया था। अतः दयाशंकर जी को पूरा विश्वास था कि तेन्दुआ वहां अवश्य आएगा। उन की प्रार्थना पर पुलिस अधिकारियों ने एक रात के लिए उन अवयवों को उसी स्थान पर रहने देना स्वीकार कर लिया।

दयाशंकर जी की इच्छा थी कि ऐसे धूर्त आदमखोर को मारते समय वह अकेले ही रहें, किन्तु श्री पंजाबराव भी उन के साथ रहने का आग्रह करने लगे। 'नए' आदमी को साथ रखना तो मौत को बुलाने के बराबर होता है। पंजाबराव उस प्रेतात्मा की भयानकता से भी परिचित थे, किन्तु उन्हें पूरा भरोसा था कि दयाशंकर जी के रहते किसी पर कोई आंच नहीं आ सकती। अतः उन के जोरदार आग्रह पर दयाशंकर जी को उन्हें भी अनिच्छा से साथ रखना पड़ा।

शाम के पहले से ही वे दोनों उस ठूंठ के पीछे आ छिपे थे। अपने सामने की ओर घनी झाड़ियों पर उन की आंखें जमी थीं। उसी ओर तेन्दुए के आने की पूरी सम्भावना थी।

अंधेरा होने के पूर्व ही उन के बाईं ओर की झाड़ी में आहट हुई। पंजाबराव एकदम चौंक उठे। दयाशंकर जी ने अपनी बन्दूक साध ली। लगा कि कोई प्राणी धीरे-धीरे चल रहा था। उन के हृदय की धड़कनें बढ़ने लगीं। दयाशंकर जी ने ध्यान से देखा। और उन के होंठों पर मुसकान खेलने लगी। एक पालतू कुत्ता सूंघता हुआ धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। कुछ सोच कर दयाशंकर जी ने एक नुकीला पत्थर उठाया और उसे कुत्ते के मुंह पर दे मारा। पत्थर लगते ही वह कुत्ता चिल्लाता हुआ गांव की ओर भागा।

अब वे बड़ी सावधानी से बैठ कर तेन्दुए की प्रतीक्षा करने लगे। हवा उन घनी झाड़ियों की ओर से ठूंठ की दिशा में बह रही थी। अतः हवा की प्रतिकूलता के कारण उन की गंध भी तेन्दुए को लगनी सम्भव न थी।

प्रतीक्षा करते-करते आठ, नौ, दस बज गए। किन्तु तेंदुआ वहां फटका भी नहीं।

आखिर प्रतीक्षा करते-करते ग्यारह बज गए। चांदनी रात में आगे का दृश्य साफ दिखाई देता था। गर्मी का मौसम होने के कारण जहां-तहां सूखे पत्ते और सूखी घास बिखरी पड़ी थी। एकाएक सामने की घास हिली और एक तेंदुआ धीरे-धीरे आगे सरकता दृष्टिगोचर हुआ।

तेंदुआ बड़ी सतर्कता से दबे पांव, इधर-उधर देखते, आहट लेते चुपचाप बढ़ा चला आ रहा था। बीच-बीच में वह खड़ा हो कर आसपास की झाड़ियों की टोह लेता। दयाशंकर जी ने तत्काल संकेत से अपने साथी को तेन्दुए का आगमन सूचित कर दिया, ताकि वह बड़ी सावधानी और सतर्कता से बिना कोई हलचल किए बैठे रहें, किन्तु इस का परिणाम बुरा ही निकला।

श्री लोनकर ने देखा कि एक भयंकर आकृति वाला वह भयानक तेन्दुआ क्रमशः करीब होता जा रहा था। उन्हें उस के बीते कृत्य स्मरण हो आए। सूखे पत्ते बिखरे रहने से भी तेंदुए के चलने से कोई आवाज पैदा नहीं हो रही थी। यह दृश्य देख कर पंजाबराव कांप उठे। धीरे-से उन्हों ने फुसफुसा कर कहा—"यह प्रेतात्मा ही है। हवा के सहारे चल रही है। कोई आवाज नहीं होने देती।" और वह पत्ते की तरह कांपने लगे। शरीर पसीना-पसीना हो गया।

तेन्दुए को तो इतनी-सी आहट पर्याप्त थी। वह एकदम सजग हो गया। दयाशंकर जी बड़े असमंजस में पड़ गए। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें! अपने साथी को सम्हालें या तेन्दुए पर ध्यान दें।

तेन्दुए ने ठूंठ की ओर देखा और एकदम उस ने अपना अंग सिकोड़ लिया। कान नीचे दबा कर उठी हुई दुम के आखिरी हिस्से को मोड़ते हुए ज्यों ही वह छलांग भरने को उद्यत हुआ, दयाशंकर जी ने उसे लक्ष्य कर अपनी दुनाली बंदूक के दोनों मुंह एक साथ खोल दिए। 'धांय' की जोरदार आवाज हुई और उसी समय तेन्दुआ जोर से दहाड़ कर ऊपर उछला; और नीचे बेहोश हो कर गिर पड़ा। दयाशंकर जी अपनी बंदूक में नए कारतूस भरने की तैयारी करने लगे, किन्तु तभी पंजाबराव उठ खड़े हुए। दयाशंकर जी ने उन्हें सम्हालने की कोशिश की, किन्तु व्यर्थ। उसी समय तेन्दुआ होश में आ गया। ज्यों ही उस ने खड़े हुए पंजाबराव को देखा, जोरदार गर्जना करते हुए वह इस ओर टूट पड़ा। पंजाबराव के जीवन के कुछ ही क्षण और प्रतीत हुए। दयाशंकर जी ने झटपट नई कारतूस भर ली थी किन्तु निशाना चूक जाने का भी भय था। इधर श्री पंजाबराव भागने की चेष्टा करते ही एक पत्थर से टकरा कर गिर पड़े। ठीक उसी समय तेन्दुए ने छलांग भरी। श्री पंजाबराव के गिर पड़ने से उस की घातक छलांग जरा-सी चूक गई। तेन्दुआ उन के पास से गुजरता हुआ ७ फुट पीछे उस गड्ढे में जा गिरा। अब दयाशंकर जी उठ खड़े हुए। तेन्दुए को लक्ष्य कर उन्हों ने बंदूक की लिबलिबी दबा दी। एकदम पास होने से तेन्दुए को छर्रों की करारी चोट लगी। एक बार तो वह जोर से गरजा, किन्तु फिर कुछ ही देर तड़प कर हमेशा के लिए शान्त हो गया।

तेन्दुए के शान्त होते ही पंजाबराव उठ खड़े हुए। अपने शिकार की सफलता की श्री दयाशंकर को बहुत प्रसन्नता हुई। उन के मित्र की घिग्घी बंध चुकी थी। बहुत समझाने पर भी वह दयाशंकर जी से बच्चों की तरह चिपट गए थे।

सवेरे तेन्दुए को बाहर निकाला गया। उसे ध्यान से देखने पर दयाशंकर जी को पता चला कि उस के ऊपर के जबड़े का बाईं ओर का एक बड़ा मुख्य दांत पहले से टूट चुका था और उस के कंधों और सिर के पास छर्रों के पुराने घाव के चिह्न थे। वह पहले से जख्मी था। अपने नैसर्गिक शिकार-साधन की क्षति हो जाने के कारण ही वह गांवों के आसपास चक्कर काटने लगा था और एक बार मनुष्य के खून का स्वाद लग जाने पर वह कट्टर नरभक्षी बन गया। उस के उत्पात और आतंक से त्रस्त हो भोले आदिवासियों द्वारा उसे 'पड़तबाघ' घोषित कर दिया गया।

इस प्रेतात्मा के मरने की खबर गांवों में विद्युत गति से फैल गई। लोगों की प्रसन्नता का तो वर्णन नहीं किया जा सकता।

इस तेन्दुए ने मनुष्य मारने का नया रेकार्ड कायम किया था। बहुत-से लोगों को घायल करने के अलावा वह तेरह मनुष्यों (स्त्री-पुरुष और बच्चों) को मार कर खा गया था।

●

दो संसद सदस्यों की हिन्दी-वार्त्ता

(पृष्ठ ७ का शेष)

बाहर से होना चाहिए। इस कार्य को प्रारम्भ करने के लिए केन्द्रीय सरकार को चाहिए कि पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम भारत में राजभाषा मंडलों को स्थापित करे और इन मंडलों के द्वारा शिक्षण, विकास, प्रचार तथा प्रसार के साधनों द्वारा हिन्दी को आगे बढ़ाए, ताकि राज्य-सरकार भी ऐसे मंडलों से फायदा उठा सकें और अपना कार्य अपने पड़ोसी सरकारों के बीच तथा केन्द्रीय सरकार के मध्य हिन्दी के द्वारा कर सकें।

प्रश्न : क्या आप ऐसी हालत में हिन्दी को, जो लोग उत्तर की भाषा समझते हैं, अहिन्दी प्रान्त के लोग स्वीकार करेंगे? इस पर आप कृपया कुछ प्रकाश डालिए!

उत्तर :—जब राजभाषा का सवाल संविधान-सभा में आया तो उस पर सभी पहलुओं से विचार किया गया और इस सवाल के ऊपर जो विवाद उठा था उस में बहुत बड़ा भयंकर संघर्ष भी पैदा हुआ था। कुछ ऐसा लग रहा था कि भाषा के सवाल को ले कर देश की एकता टूटने जा रही है। लेकिन इस देश के निवासियों के सौभाग्य से देश को ऐसा नेतृत्व प्राप्त हुआ, जिस के द्वारा भाषा के सवाल पर कुछ नया प्रकाश पड़ा और नए रास्ते खुल गए। उस समय सब से बड़ा झगड़ा यही था कि भारत की प्रादेशिक भाषाएं, जिन में से कुछ हिन्दी से अधिक विकसित हैं—कुछ लोगों के विचारों के अनुसार—हिन्दी को राजभाषा के पद पर बैठाना नहीं चाहेंगी, वे तब तक हिन्दी को स्वीकार नहीं करेंगी जब तक वह उस स्तर और उस स्थान के लिए अपने को योग्य न बना ले। स्तर और स्थान का मूल्यांकन अंग्रेजी की तुलना के द्वारा किया गया। तथापि यह तर्क और तथ्य कुछ लोगों को अच्छा नहीं मालूम हुआ, फिर भी सहूलियत तथा समझौते के खयाल से यह मान लिया गया। दूसरे शब्दों में इस का यह मतलब है कि हिन्दी का विकास सिर्फ हिन्दी वालों के ऊपर ही नहीं, बल्कि अहिन्दी वालों के हाथ में भी रख दिया गया। यह तर्क तथा तथ्य धारा ३५१ में स्पष्ट अन्तर्निहित है। धारा ३५१ में यह साफ तौर पर लिखा गया है कि हिन्दी अपने विकास के लिए आठवीं सूची में उल्लिखित भाषाओं से भरपूर सहायता ग्रहण करेगी। यह मालूम होना चाहिए कि ऐसी सहायता अधूरी तथा अविकसित भाषाओं से ही प्राप्त नहीं होगी और यह भी यहां पर स्पष्ट है कि आठवीं सूची की भाषाओं में हिन्दी का भी नाम उल्लिखित है, अर्थात तथाकथित प्रादेशिक भाषाएं, जिन में हिन्दी भी शामिल है, मिल कर के राजभाषा के स्थान पर बैठने के लिए एक ऐसी भाषा का विकास करेंगी, जिस के द्वारा समस्त देश के लोग यह अनुभव कर सकें कि देश की राजभाषा के विकास में उन का भी अनुदान यथेष्ट है और साथ ही साथ विकसित राजभाषा का अध्ययन करते हुए उस के साथ आत्मीयता का भी अनुभव करें। अगर इस समय किसी योजना की आवश्यकता है तो यही योजना होनी चाहिए कि राजभाषा हिन्दी प्रादेशिक भाषाओं के बीच अपना स्थान बना कर विकसित होने लग जाए, जिस से कि प्रादेशिक भाषाओं का सहयोग और सम्पर्क ही नहीं, बल्कि उन की सम्पत्ति का भी अनुदान उन्हें भरपूर मिल सके। इस से दोनों का लाभ होगा और दोनों का लाभ होगा और दोनों साथ-साथ विकसित होंगी। इस साहचर्य व्यापकता से भाषाओं के बीच में समन्वय ही नहीं पैदा होगा, बल्कि वे अपने को सर्वोच्च स्थान पर बैठाने के लिए एकरूपता भी प्राप्त कर सकेंगी। यदि हमारी सार्वदेशिकता के अर्थ में ऐसी एकरूपता शामिल नहीं है, तो सार्वदेशिकता निरर्थक ही होगी।

प्रश्न :—आप ने इस समय जो कहा है, क्या वह सर्वथा नूतन सुझाव ही है अथवा आप ने उस के अनुसार व्यावहारिक क्षेत्र में काम भी किया है?

उत्तर—आप को मालूम हो कि मैं ने कभी भी हिन्दी भाषा के प्रचार के कार्य को सीमित दृष्टि से नहीं देखा। मेरा विश्वास है कि अंतरप्रादेशिक दृष्टि के बिना सार्वदेशिक दृष्टि अधूरी ही नहीं, कुछ अंशों में एकता के लिए भी घातक ही है। इस को ध्यान में रखते हुए मैं ने दक्षिण भारत में हिन्दी को प्रादेशिक भाषा के साथ-साथ सहचारिणी भाषा के रूप में प्रचारित किया है। हमारे कार्य से जो परिचित हैं, वे जानते हैं कि किसी भी हिन्दी-प्रचारक ने कभी भी ऐसे विद्यार्थी को हिन्दी नहीं पढ़ाई, जो अपनी भाषा से अपरिचित था। हमारे इस समय के कार्यकर्त्ताओं में, जिन की संख्या लगभग दस हजार है, शायद ही ऐसा व्यक्ति होगा, जो अपनी भाषा में प्रवीण न हो। इस सिद्धान्त को दृढ़तापूर्वक स्वीकार करने के लिए दक्षिण की हिन्दी-परीक्षाओं की योजनाओं में प्रादेशिक भाषाओं का अध्ययन भी एक अनिवार्य विषय रखा गया है। इस का फल यह हुआ कि कितने ही हिन्दी-प्रचारक आज अपनी भाषा में कुशल वक्ता और लेखक बन गए हैं। दक्षिण भारत में विरला ही कोई ऐसा समाचार-पत्र या सामयिक पत्र होगा, जिस में दो-एक पत्रकार हिन्दी के अच्छे ज्ञाता न हों। फलस्वरूप आज दक्षिण भारत की भाषाओं में हजारों शब्द हिन्दी के प्रचलित हो गए और दक्षिण भारत में लिखी जाने वाली हिन्दी में भी वहां के हजारों शब्द, प्रयोग और मुहावरे आ गए। आज दक्षिण भारत में लाखों ऐसे विद्यार्थी हैं, जो अपने पड़ोसी प्रान्तों में जा कर हिन्दी के द्वारा अपना काम कर सकते हैं। यह कार्य केवल सामाजिक छोटे-मोटे व्यापार के लिए ही हुआ। राजनीतिक, उच्चतम साहित्य या दूसरे बौद्धिक क्षेत्रों में विस्तारपूर्वक नहीं हो सका। इस का एकमात्र कारण यही है कि हिन्दी आज दक्षिण भारत में या अहिन्दी प्रान्तों में विश्वविद्यालय की भाषा नहीं है और न उसे किसी राज्य सरकार की मदद ही मिली। जब ये दोनों सुविधाएं प्राप्त हों, तो अहिन्दी प्रान्तों के लिए हिन्दी को वह स्थान देना, जो आज अंग्रेजी को प्राप्त है, मुश्किल नहीं है।

राष्ट्रीय अभिलेखागार भारत National Archives of India

वी. पी. पी. से मंगाइये

खाज-खुजली

आपकी त्वचामें लगभग पांच करोड़ सूक्ष्म परतें एवं छिद्र हैं, जिनमें कीटाणु, खून चूसनेवाले जीव–जन्तु एवं रोग के कीटाणु छिप सकते हैं तथा उनसे भयंकर खुजलाहट, फटन, खाज, कटान, त्वचाकी जलन, मुहासे, दाद, ब्लेकहेड्स, बरें, पैर फटने तथा अन्य फोड़े–फुंसियों के रोग हो जाते हैं। साधारण इलाजसे केवल अस्थायी आराम मिलता है, क्योंकि वे कीटाणु उत्पन्न करनेवाले दोष को नष्ट नहीं कर पाते। निक्सोडर्म (Nixoderm) वह वैज्ञानिक विधि (फर्म्युला) है, जो शीघ्र ही कीटाणुओंपर धावा बोलकर तथा आपकी त्वचाको चिकना, कोमल, स्वच्छ एवं आकर्षक बनानेमें सहायता करती है। इस आश्वासनके साथ अपने केमिस्टसे आज ही निक्सोडर्म (Nixoderm) खरीदिये, क्योंकि निक्सोडर्म (Nixoderm) निश्चयही चर्मरोगों के कीटाणुओंसे उत्पन्न होनेवाले दोषको दूर करता है।

डाक्टर बनें

घर बैठे डाक से पढ़ाई करके आप गवर्नमेंट द्वारा रजिस्टर्ड कालेज का डिप्लोमा प्राप्त कर सकते है। मुफ्त प्रासपेक्टस के लिए लिखें

इंडियन होमियोपैथिक कालेज

(SHN) जालन्धर शहर।

बचत योजना

स्कूल, कालेज, मिल्स व दफ्तरों में

ओमेगा

पाउडर स्याही का प्रयोग कर अपने खर्च में कमी करें

मूल्य रु. ७.०० प्रति टिन (७ कि. ग्राम.) जिससे ७५० कि. लि. की ८० बोतलें तैयार होती हैं।

हिन्द इंक्स (इन्डिया)

उन्नाव (उ० प्र०)

सपट लोशन★मल्हम

दाद, खाज, खुजली पर

R.P.C. Manufacturers. SAPAT & CO. Bombay 2

शक्ति पाइये, चुस्त होइये, उल्लसित रहिये, फिर जवानी महसूस किजिये

क्या आप अपनेको बुढ़ा, थका-मांदा एवं शक्तिहीन पाते हैं और जवानी की दैनंदिन सक्रियताका आनन्द उठानेमें असमर्थ हैं? यदि ऐसा है, तो आज ही महज अपने केमिस्टके पास चले जाइये और वाई-टेब्स (Vi-Tabs) मांगिये। यह आधुनिक औषधि आपके समूचे शरीर को शक्ति देनेमें शीघ्र असर करती है ताकि आप हर समय दैनंदिन सक्रियता के लिये अधिक जवानी, अधिक शक्ति और जोश महसूस करें। हिम्मत न हारिये और समय के पूर्व बुढ़ापेका शिकार न बनिये। आज ही अपने केमिस्ट से वाई-टेब्स (Vi-Tabs) खरीदिये। अपने आपमें जवानी महसूस कीजिये। पूर्ण संतोषका आश्वासन।

प्रत्येक वस्तु को रजिस्टर्ड-पेटेन्ट

कराने के लिये लिखें या मिलें!

डा. एस. एन. गुप्तः एण्ड सन्

मसना आफिस, मुरादाबाद.

★ टेलीफोन : 199 ★ तार: मसना

सिर्फ एक पोस्टकार्ड

यदि आप लिफाफा खर्च नहीं करें, तो पोस्ट कार्ड पर ही बीमारी के लक्षण रोगी की उम्र एवं दशा लिख कर भेज दें। आपको मुफ्त सलाह दी जाएगी। बन्द लिफाफे में जवाब चाहते हों तो लिफाफा या डाक टिकट भेजिए। सूचीपत्र मुफ्त मंगाए।

हालत और पता साफ लिखें :—

हरिदास एंड कम्पनी, मथुरा

बाँस से निकला असली बंशलोचन

बच्चों युवा एवं वृद्धों को महान पौष्टिक तथा गर्भवती स्त्रियों के लिये विशेष रूप से हितकारी

हमारे सील बंद डिब्बे ही खरीदें

लखपत राय सम्पत राय साघ

कलकत्ता–७

डाक्टर बनें

घर बैठे डाक से पढ़ाई करके आप गवर्नमेंट द्वारा रजिस्टर्ड कालेज का डिप्लोमा प्राप्त कर सकते है। मुफ्त प्रास्पेक्टस के लिए लिखें।

ओरियंटल होमियोपैथिक कालेज (SHN) जालन्धर सिटी

कोमल चमड़ीके बाल निकालनेके लिये.. बादशाही साबू, पावडर, लोशन

सर्वोत्तम है

सुवासित बादशाही बालसफा पाउडर के इस्तेमाल से बाल भली भांति बिना किसी कठिनाई के निकल जाते हैं।

आधुनिक ढंग से दुर्गन्ध निकाल कर खुशबू से प्रभावित किए हुए बादशाही पाउडर को इस्तेमाल कर अपनी मुलायम चमड़ीको सुरक्षित रखें।

सी० सी० महाजन

एण्ड कम्पनी, बम्बई–२

हमारे मेल ऑर्डर गर्मियों के सर्वोत्तम चुनाव प्रस्तुत करते हैं :

१–हैण्डलूम आल कॉटन आकर्षक फूलदार साड़ियां रु. ४८)

२–शुद्ध रेशम प्रिंटिड पेस्टल शेडस साड़ियां रु. ४८)

३–सुनहरी बूटेदार विवाह अवसर पर भेंट स्वरूप दी जाने वाली साड़ियां रु. १३५)

आर्डर के साथ पूरे दाम अग्रिम भेजें।

सेण्ट्रल आर्ट एम्पोरियम

ए–६, कनाट प्लेस, नई दिल्ली–१

एक कहे और दूसरा . . .

(पृष्ठ ९ का शेष)

जर्मन, चीनी हों या जापानी, उन के अनुवाद में समय बर्बाद न कर हमें उन की शब्दावली उदार भाव से तुरन्त ज्यों की त्यों ले लेनी चाहिए। उन से हमारी भाषा विकसित ही होगी, अवरूद्ध नहीं।

परन्तु जिन विदेशी शब्दों के पर्याय हमारी किसी भी भाषा में—हिन्दी, प्रादेशिक अथवा संस्कृत, किसी में भी पहले से ही विद्यमान हैं, उन्हें पहली प्राथमिकता देनी चाहिए। उन के लिए न तो विदेशी शब्दों को स्वीकार करना श्रेयस्कर होगा और न ही नए क्लिष्ट शब्दों का गढ़ना।

साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि स्वयं संस्कृत में भी सरल और कठिन, दोनों प्रकार के शब्द हैं। अमर-कोष में लोहार, सोनार, कुम्भार, मजदूर, गाड़ी, डोली, लगाम आदि संस्कृत के सहस्रों सरल शब्दों का उल्लेख है, परन्तु नई शब्दावली में इन के स्थान पर भी संस्कृत के कठिन शब्द रखने की प्रवृत्ति है, जैसे ये शब्द भी अपने न हो कर पराए हों। हमें इस प्रवृत्ति से बचना होगा।

इस के अतिरिक्त जो नए शब्द हम बनाते भी हैं उन में लोक-व्यवहार को प्रश्रय न देना सरासर गलती होगी। हिन्दी में प्राचीन काल से गोशाला, अश्वशाला, हस्तिशाला आदि शब्दों का प्रयोग होता आया है, परन्तु आज 'गराज' के लिए 'वाहित्रगृह' जैसे शब्द बनने लगे हैं। यदि हम गराज जैसे शब्द न ले कर उन के लिए अपना शब्द रखना ही चाहें तो भी वाहित्रगृह के स्थान पर मोटर-घर, मोटरशाला, कार-घर या वाहन-घर जैसे शब्द अधिक उपयुक्त और जनभाषा के निकट होंगे। इसी प्रकार साइकिल के लिए पैरगाड़ी, रेलवे ट्रेन के लिए रेलगाड़ी, मोटरकार के लिए मोटरगाड़ी, एरोप्लेन के लिए हवागाड़ी जैसे सरल शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है।

इस प्रसंग में एक बात और भी महत्वपूर्ण है और वह यह कि हिन्दी में प्रायः संस्कृत का व्याकरण थोप कर उसे बलात् जटिल बना दिया जाता है। किसी भी भाषा की शक्ति उस के अपने व्याकरण के सहारे मापी जाती है। उद्गम भाषा के व्याकरण के आधार पर नहीं।

इस लिए हमें राजनीतिक-मदान्धता, प्रादेशिक संकीर्णता तथा पुरातन अथवा शुद्धतावादी मान्यताओं से ऊपर उठ कर लोक-भाषा तथा शास्त्र-भाषा के बीच का अन्तर यथाशक्य कम करने का प्रयत्न करना चाहिए, ताकि भाषा सबल तथा सक्षम बने, अखिल भारतीय स्तर पर भावनात्मक एकता का विकास हो, प्रादेशिक विद्वेष कम हो और हम सभी भाषागत सहिष्णुता के पथ पर तेजी से आगे बढ़ सकें। अभी हमारे पास सन् १९६५ तक काफी समय है और इस बीच यदि हम पारस्परिक झगड़ों में न फंसे रह कर उत्साह तथा नेकनियती से काम करते रहे तो शीघ्र ही प्रत्येक भारतवासी हिन्दी को अपनी भाषा मानने लगेगा, उसे उस में लिखने-पढ़ने और बोलने-चालने, सभी में आनन्द आने लगेगा, क्यों कि मजा कहने का तब है जब एक कहे और दूसरा समझे।

NATIONAL ARCHIVES OF INDIA

राष्ट्रीय अभिलेखागार भारत National Archives of India